

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 8: भरत और मृगछौना

18 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



एक मातृहीन मृगछौने पर करुणा से द्रवित होकर, ऋषि-राज भरत उसे अपने आश्रम में ले आते हैं और उसे इतने कोमल प्रेम से गोद में लेते हैं कि उनका हृदय, जो कभी पूर्णतया भगवान् पर स्थिर था, धीरे-धीरे एक छोटे-से मोह से बँध जाता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में, सम्राट् भरत ने अपना सिंहासन त्यागा और पुलह के आश्रम में प्रस्थान किया, जहाँ भगवान् के प्रति उनका प्रेम इतना गहरा हो गया कि वे आराधना में रो पड़े और अनुष्ठान को ही भूल गए। पंचम स्कन्ध का यह आठवाँ अध्याय समस्त भागवत की सबसे कोमल और चेताने वाली

कथाओं में से एक कहता है: किस प्रकार यही महान् आत्मा, जिसने एक समूचे राज्य और अपने प्रिय पुत्रों तक को छोड़ दिया था, एक अकेले मातृहीन मृगछौने के मोह से बँध गई — और किस प्रकार वह एक मोह, जो करुणा से जन्मा था, मृत्यु के समय उनके हृदय को इतना भर गया कि वे एक मृग की देह में जन्म ले बैठे। यह कथा, हृदय-विदारक कोमलता के साथ, यह सिखाती है कि उन्नत साधक को भी अपने हृदय की कितनी सावधानी से रक्षा करनी चाहिए।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 8 (अष्टम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: भरत और मृगछौना
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: गण्डकी नदी के तट पर शालग्राम में स्थित पुलह ऋषि का आश्रम
- केन्द्रीय विषय: किस प्रकार भरत ने करुणावश एक मातृहीन मृगछौने को बचाया, उससे मोह कर लिया, अपनी साधना की उपेक्षा की, और मृत्यु के समय मृग का ही चिन्तन करते हुए एक मृग के रूप में जन्म लिया — फिर भी अपने पूर्वजन्म की स्मृति को धारण किए रखा और पुनः मुक्ति की ओर मुड़े
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 8, श्लोक 1–31
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय से

सातवें अध्याय में, सम्राट् भरत ने सिंहासन पर बैठे एक सन्त के समान समस्त पृथ्वी पर शासन किया, प्रत्येक यज्ञ का फल भगवान् वासुदेव को अर्पित करते हुए। अपना राजकर्तव्य पूर्ण होने पर उन्होंने अपना राज्य अपने पुत्रों में विभाजित किया और पावन गण्डकी के तट पर पुलह के आश्रम में प्रस्थान किया, जहाँ उन्होंने परम पुरुष की इतनी प्रबल भक्ति से आराधना की कि वे रो पड़े और आराधना को ही भूल गए। यह अध्याय उसी आश्रम में उनकी कथा को आगे बढ़ाता है — और दिखाता है कि किस प्रकार इतना उन्नत भक्त भी स्खलित हो सकता है।

नदी-तट पर एक प्रातःकाल

एक दिन, महानदी गण्डकी में स्नान कर और अपने नित्य नियमों को पूर्ण कर, भरत तीन मुहूर्त के लिए तट पर बैठ गए, धीरे-धीरे पवित्र ॐकार का जप करते हुए।

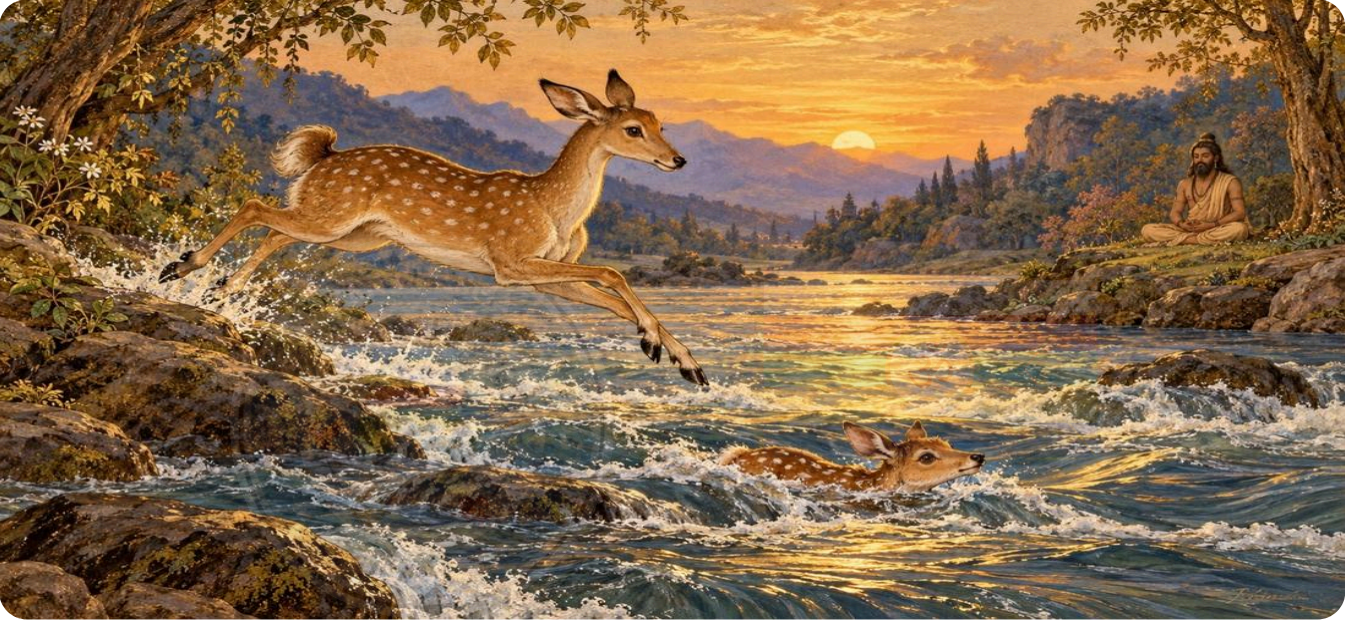
श्रीशुक उवाच

एकदा तु महानद्यां कृताभिषेकनैयमिकावश्यको ब्रह्माक्षरमभिगृणानो मुहूर्तत्रयमुदकान्त उपविवेश ॥ १ ॥

*śrī-śuka uvāca ekadā tu mahā-nadyām kṛtābhiṣeka-naiyamikāvaśyako brahmākṣaram
abhigṛhṇāno muhūrta-trayam udakānta upaviveśa*

अर्थ: श्रीशुक ने कहा: एक दिन, महानदी में स्नान कर और अपने आवश्यक नियमों को पूर्ण कर, भरत जल के किनारे तीन मुहूर्त के लिए बैठ गए, पवित्र ॐकार (अविनाशी ब्रह्म) का धीरे-धीरे जप करते हुए। (स्कन्ध 5, अध्याय 8, श्लोक 1)

जैसे ही वे वहाँ बैठे थे, गर्भवती एक हिरणी उसी तट पर जल पीने आई। और ठीक उसी क्षण, पास ही, एक सिंह भयंकर गर्जना करने लगा। हिरणी, स्वभाव से भीरु, भय से व्याकुल हो उठी; अभिभूत और घबराई हुई, वह एक ही छलाँग में उस धारा के पार कूद गई, उसकी प्यास अभी भी अनबुझी। उस विकट छलाँग में, उसके गर्भ का शिशु उससे छूट गया; नवजात मृगछौना नदी की धारा में जा गिरा। अकस्मात् प्रसव और लम्बी छलाँग से क्षीण होकर, और अब अपने झुण्ड से भटककर, हिरणी पास ही एक गुफा में गिर पड़ी और प्राण त्याग गई।



जब भरत गण्डकी के तट पर जप करते हुए बैठे हैं, एक भयभीत हिरणी सिंह की गर्जना पर धारा के पार कूद जाती है, और उसका नवजात मृगछौना धारा में बह जाता है (श्लोक 1-6)।

करुणा एक बन्धन बन जाती है

भरत ने उस नन्हे मृगछौने को देखा, असहाय और मातृहीन, जल में बहता हुआ। करुणा से द्रवित होकर, ऋषि-राज ने उसे बाहर निकाला, और, यह जानकर कि उसकी कोई माता नहीं, उसे अपने आश्रम में ले आए और एक सच्चे मित्र के समान उसकी देखभाल करने लगे।

उस दिन से वे उस नन्हे प्राणी का ही निरन्तर चिन्तन करते रहे — उसे खिलाते, भेड़ियों और अन्य पशुओं से उसकी रक्षा करते, कोमल स्नेह से उसे सहलाते और पुचकारते। और इस प्रकार, एक-एक कर, उनकी अपनी नित्य साधनाएँ — उनका स्नान, उनके संयम-नियम, यहाँ तक कि भगवान् की उनकी प्रेममयी आराधना — उपेक्षित होने लगीं, और कुछ ही दिनों में चुपचाप पूर्णतया छूट गई। वे मन ही मन तर्क करते कि एक असहाय प्राणी को त्याग देना निष्ठुरता होगी जिसने केवल उन्हीं की शरण ली है, जो संसार में और किसी को नहीं जानता; निश्चय ही, वे सोचते, सज्जन और करुणामय अपने बड़े स्वार्थों की उपेक्षा दुर्बलों के लिए कर देते हैं। इस प्रकार उनका हृदय, जो कभी पूर्णतया भगवान् से बँधा था, अब मृगछौने से बँध गया — बैठते और सोते, चलते और खड़े होते और भोजन करते, उनका मन उससे कभी मुक्त न होता।



करुणा से द्रवित होकर, भरत मातृहीन मृगछौने को धारा से उठाते हैं और उसे अपने आश्रम में ले आते हैं, एक प्रिय मित्र के समान उसकी देखभाल करते हुए (श्लोक 7-8)।

जब भी वे कुश, पुष्प, यज्ञ की समिधा, फल या जल लेने जाते, तो वे उस मृगछौने को साथ ले जाते, इस भय से कि कहीं भेड़िये या कुत्ते उसे हानि न पहुँचाएँ। यदि वह मार्ग में थक जाता, तो वे उसे अपने कन्धे पर उठा लेते, या अपनी गोद और छाती से लगाकर, आनन्द से भरे हृदय से उसे दुलारते। किसी पावन अनुष्ठान के बीच में भी वे बार-बार उठकर उसे देखते, और, उसे सुरक्षित पाकर, कोमलता से आशीर्वाद देते: “तुम चारों ओर से सुरक्षित रहो, मेरे प्रिय।”

जब मृगछौना भटक जाता

और जब भी वह मृगछौना दृष्टि से ओझल हो जाता, भरत व्याकुलता में डूब जाते, उस कंजूस के समान जिसने अपना कोष खो दिया हो। वे उसके लिए शोक करते, वियोग की पीड़ा से बिंधे हुए, और अपनी उत्कण्ठा में विलाप करते: क्या वह बेचारा अनाथ, उन पर विश्वास कर, पुनः लौटेगा? क्या वे उसे फिर देखेंगे, उपवन में सुरक्षित चरते हुए? कहीं कोई भेड़िया या बाघ उसे खा तो नहीं गया? समस्त संसार को प्रकाश देने वाला सूर्य अस्त हो रहा था — और फिर भी वह नन्हा मृग उनके पास नहीं लौटा था।

वे मृगछौने की बात ऐसे प्रेम से करते जैसे किसी दुलारे पुत्र की, यह सोचते हुए कि उसकी वे मनभावन, चंचल चेष्टाएँ कब लौटेंगी जो उनके घायल हृदय को शान्ति देती थीं, और स्वयं से कहते कि निश्चय ही उनका सारा पुण्य चुक गया होगा, अन्यथा उनका मृग अब तक लौट आया होता। ध्यान का आभास करते हुए बैठे रहने पर भी वे यह भूल न पाते कि वह नन्हा मृग किस प्रकार प्रेम-भरे रोष में उनकी परिक्रमा करता और अपने नए, कोमल सींगों की नोकों से उन्हें छू लेता; न ही यह कि जब वह पूजा के लिए बिछाई गई कुश-घास पर आ जाता और अपने चंचल मुख से उसे दूषित कर देता, तो वे उसे धीरे से हटा देते, और वह किसी सुशिक्षित बालक के समान भयभीत और स्थिर बैठ जाता। अपने अनुष्ठान से भी उठकर उसे ढूँढ़ने जाते, तो भूमि पर उसके छोटे-छोटे खुर्ों के चिह्न पाकर वे उन्हें किसी पावन चिह्न के समान सराहते, यह घोषित करते हुए कि इस धरती ने अवश्य ही महान् तप किया होगा जो इतने सुन्दर चिह्न से धन्य हुई, और जहाँ कहीं मृग के पदचिह्न दिखें, वह भूमि विद्वानों के यज्ञ के योग्य बन जाती है (श्लोक 20-23)।

वे इतने व्याकुल हो गए कि, चन्द्रमा को निहारते हुए, उन्होंने उसके धुँधले चिह्नों को अपने ही खोए मृगछौने का आकार समझ लिया, मानो चन्द्रमा ने उसे सिंह के भय से अपनी शरण में रख लिया हो, और उसकी शीतल किरणों को वियोग के ज्वर पर किसी मित्र द्वारा उँडेले गए स्नेह-जल के समान अनुभव कर, उस कल्पना में सान्त्वना पाई।



जब भी मृगछौना दृष्टि से ओझल होता है, भरत व्याकुलता में डूब जाते हैं, यहाँ तक कि चन्द्रमा के चिह्नों को निहारते और वहाँ अपने प्रिय मृग का आकार कल्पित करते हुए (श्लोक 15-25)।

ऐसी कल्पनाओं से व्यथित होकर, ऋषि-राज उन्हीं भक्ति और योग की साधनाओं से विमुख हो गए जिनके लिए उन्होंने संसार का त्याग किया था। श्रीशुकदेव ने कहा, कितना विचित्र है कि जो अपने प्रिय पुत्रों तक को त्याग सका था — एक कहीं कठिन वियोग — वह अब दूसरी योनि के एक प्राणी से इतना बँध गया। यह वास्तव में एक अगम्य दैव की ही लीला थी।

मृत्यु का क्षण

जब भरत इस प्रकार मृग की देखभाल में खोए हुए थे, उनका योग भंग और उनका मन पूर्णतया उसके पोषण और रक्षण में लीन, तब मृत्यु का क्षण आ पहुँचा — तीव्र और अनतिक्रम्य, जैसे एक सर्प चूहे के बिल की ओर सरकता है। और उस अन्तिम क्षण में भी, मृगछौना उनके पास खड़ा था, एक पुत्र के समान विलाप करता हुआ, और भरत और कुछ भी न सोच सके। अपने मन को केवल उस मृग पर स्थिर करते हुए, उन्होंने अपनी देह त्यागी — और अपने अगले जन्म में एक मृग की ही देह प्राप्त की। फिर भी, भक्ति में अपने दीर्घ प्रयास के कारण, एक वस्तु उनसे उस पुरानी देह के समान नहीं छूटी: उनके पूर्वजन्म की स्मृति।

तदानीमपि पार्श्ववर्तिनमात्मजमिवानुशोचन्तमभिवीक्षमाणो मृग एवाभिनिवेशितमना विसृज्य लोकमिमं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु न मृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप ॥ २७ ॥

*tadānīm api pārśva-vartinam ātmajam ivānuśocantam abhivīkṣamāṇo mṛga evābhiniveśita-
manā visṛjya lokam imañ saha mṛgeṇa kalevaram mṛtam anu na mṛta-janmānusmṛtir itaravan
mṛga-śarīram avāpa*

अर्थ: उस समय भी, अपने पास पुत्र के समान विलाप करते खड़े मृग को निहारते हुए, अपने मन को केवल उसी पर स्थिर किए, भरत इस लोक को छोड़कर, मृग के साथ ही अपनी देह त्याग गए; और उन्होंने एक मृग की देह प्राप्त की, जैसे कोई और प्राप्त करता — फिर भी उनके पूर्वजन्म की स्मृति उस त्यागी हुई देह के साथ नष्ट नहीं हुई। (स्कन्ध 5, अध्याय 8, श्लोक 27)



मृग के रूप में जन्म लेकर भी अपने पूर्वजन्म को स्मरण करते हुए, भरत झुण्ड को त्याग देते हैं और शालग्राम के पावन आश्रम में लौट आते हैं, मौन तप में रहते और मुक्ति की प्रतीक्षा करते हुए (श्लोक 28-31)।

पश्चात्ताप और मुक्ति

अब मृग के रूप में जन्मे, भरत को — अपनी पूर्व-भक्ति की कृपा से — अपने पतन का वही कारण स्मरण हुआ, और वे कटु पश्चात्ताप से भर उठे।

अहो कष्टं भ्रष्टोऽहमात्मवतामनुपथाद्यद्विमुक्तसमस्तसङ्गस्य विविक्तपुण्यारण्यशरणस्यात्मवत आत्मनि सर्वेषामात्मनां भगवति वासुदेवे
तदनुश्रवणमननसङ्कीर्तनाराधनानुस्मरणाभियोगेनाशून्यसकलयामेन कालेन समावेशितं समाहितं कार्त्स्न्येन मनस्तत्तु
पुनर्ममाबुधस्यारान्मृगसुतमनु परिसुखाव ॥ २९ ॥

*aho kaṣṭaṁ bhraṣṭo 'ham ātmavatām anupathād yad-vimukta-samasta-saṅgasya vivikta-
puṇyāraṇya-śaraṇasyātmavata ātmani sarveṣām ātmanām bhagavati vāsudeve tad-anuśravaṇa-
manana-saṅkīrtanārāadhanānusmaraṇābhiyogenāśūnya-sakala-yāmena kālena samāveśitaṁ
samāhitaṁ kārtsnyena manas tat tu punar mamābudhasyārān mṛga-sutam anu parisusrāva*

अर्थ: “हाय, मैं आत्मवानों के मार्ग से कैसे भ्रष्ट हो गया! यद्यपि मैंने समस्त आसक्ति त्याग दी थी और एक निर्जन, पावन वन की शरण ली थी, और अपने मन को पूर्णतया, एक क्षण के व्यवधान बिना, समस्त आत्माओं के आत्मा भगवान् वासुदेव पर स्थिर कर लिया था — उनके श्रवण, मनन, कीर्तन, आराधन और स्मरण के द्वारा — मेरा वही मन, मूढ़ जो मैं था, एक क्षण में एक मृगछौने के पीछे फिसल गया।” (स्कन्ध 5, अध्याय 8, श्लोक 29)

इस पश्चात्ताप को चुपचाप भीतर धारण किए, मृग-रूपी भरत ने उस हिरणी को त्याग दिया जो अब उनकी माता थी और अपने जन्म-स्थान कालंजर पर्वत को छोड़कर, पुनः शालग्राम में पुलह और पुलस्त्य के उस पावन आश्रम में लौट आए — आत्मसंयमी ऋषियों के उस पवित्र निवास में। वहाँ वे पूर्णतया अकेले रहे, आसक्ति से सर्वाधिक भयभीत, अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा करते और केवल सूखे पत्ते, घास के तिनके और छोटी झाड़ियों पर निर्वाह करते हुए। और जब अन्ततः मृग के रूप में उनके जीवन की अवधि पूर्ण हुई, तब उन्होंने वह पशु-देह पावन गण्डकी के जल में त्याग दी, उनका हृदय पहले ही पुनः भगवान् की ओर मुड़ा हुआ।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

महान् आत्माओं को भी हृदय की रक्षा करनी चाहिए। भरत ने एक राज्य और अपने पुत्रों तक को त्याग दिया था, फिर भी एक अकेले छोटे-से मोह ने उनकी साधना को भंग कर दिया। कोई भी कभी इतना उन्नत नहीं होता कि सावधानी छोड़ दी जाए; हृदय की रक्षा अन्त तक करनी होती है।

करुणा पवित्र है — आसक्ति उसकी सूक्ष्म छाया है। भरत का मृगछौने को बचाना दया का एक सुन्दर कर्म था। संकट दया में नहीं, अपितु उससे उपजे मोह में था। हम समस्त प्राणियों की सेवा और उनसे प्रेम कर सकते हैं, फिर भी हृदय को केवल भगवान् में स्थिर रख सकते हैं।

मृत्यु के समय जो मन को भरता है, वही आगे का रूप गढ़ता है। भागवत स्पष्ट दिखाता है कि अन्तिम विचार में बड़ी शक्ति है। इसीलिए जीवन भर भगवान् का स्मरण किया जाता है — ताकि, जब अन्तिम क्षण आए, हृदय स्वाभाविक रूप से उन्हीं की ओर मुड़े।

भगवान् की कृपा नष्ट नहीं होती — पतन भी कृपा में बदल जाता है। शुकदेव स्पष्ट करते हैं कि मृगछौने के प्रति भरत का घातक मोह आकस्मिक नहीं था — यह किसी पूर्व-कर्म का फल था, जिसने उसी क्षण अपना मार्ग पाया जब उनका मन भगवान् से थोड़ा शिथिल हुआ (श्लोक 26)। किन्तु जो आत्मा भक्ति के मार्ग पर इतनी दूर तक चल चुकी हो, उसके लिए यह लेखा-जोखा साधारण नियम के अनुसार नहीं चलने दिया गया। भरत को केवल दण्डित कर विस्मृत नहीं कर दिया गया; उन्हें शीघ्र ही वही रूप दे दिया गया जो उनके भटके हुए मन ने पहले ही स्वयं के लिए गढ़ लिया था, ताकि ऋण तत्काल चुक जाए और उनकी भक्ति बिना विलम्ब पुनः आरम्भ हो सके। यही इस अध्याय की गहनतम सान्त्वना है: जिसने सचमुच भगवान् की ओर मुड़ लिया हो, उसके लिए पतन का सुधार भी कृपा से ही रचा जाता है — दण्ड देने के लिए नहीं, अपितु घर लौटने में शीघ्रता लाने के लिए। यद्यपि भरत स्खलित हुए, उनके भक्ति के वर्ष व्यर्थ नहीं गए: वे अपने पूर्वजन्म की स्मृति के साथ जन्मे, और इसलिए तत्काल पुनः मुक्ति की ओर मुड़ सके। सच्चा आध्यात्मिक प्रयास कभी नष्ट नहीं होता; वह हमें पुनः उठाने के लिए प्रतीक्षा करता है।

पश्चात्ताप स्वयं भगवान् की ओर एक मोड़ है। मृग-रूपी भरत का सच्चा शोक, और उनका पावन स्थान पर लौटना, उनके पुनरुत्थान के पहले चरण थे। किसी पतन को स्पष्ट पहचानना और निराशा बिना पुनः मुड़ना ही घर की ओर लौटने के मार्ग का आरम्भ है।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में कुछ लगभग असह्य कोमल है, और साथ ही कुछ गहराई से आश्वस्त करने वाला भी। भरत का पतन लोभ, अहंकार या किसी स्पष्ट पाप से नहीं आया — वह प्रेम से आया, एक नदी में फँसे असहाय प्राणी पर दया से। और यही इस कथा को इतना मर्मभेदी बनाता है: हृदय की वही कोमलता जिसने उन्हें सन्त बनाया, असावधान रह जाने पर, वही सूत्र बन गई जिसने उन्हें बाँध लिया। हमें इसे करुणा के विरुद्ध चेतावनी के रूप में नहीं पढ़ना चाहिए; भागवत कभी हमसे कठोर होने को नहीं कहता। बल्कि, वह हमसे विवेक से प्रेम करने को कहता है — अपनी कोमलता को प्रत्येक प्राणी की ओर बहने देना, फिर भी हृदय की गहनतम धारा को उन भगवान् पर स्थिर रखना, जो अकेले कभी नहीं खोते। और यदि हम स्खलित भी हों, जैसे भरत हुए, तो इस अध्याय का मौन आश्वासन यह है कि कोई भी सच्ची भक्ति कभी व्यर्थ नहीं जाती। वे अपनी स्मृति को मृत्यु के द्वार के पार ले गए; उनका प्रयास दूसरी ओर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था और उन्हें पुनः खींच लाया। हमारे अपने छोटे प्रयास भी भगवान् के पास सुरक्षित हैं, और भुलाए नहीं जाएँगे।

एक दैनिक भक्ति-साधना

आज, एक ऐसे मोह को पहचानिए जो चुपचाप आपके मन को घेरे रहता है — कोई व्यक्ति, कोई वस्तु, कोई चिन्ता जिस पर आप बार-बार लौटते हैं — और, उसे अस्वीकार या उससे द्वेष किए बिना, उसे कोमलता से भगवान् को अर्पित कीजिए, मन ही मन कहते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” उसके प्रति आपकी देखभाल बनी रहे, किन्तु उसे अपने हाथों में जकड़ने के स्थान पर भगवान् के हाथों में रख दीजिए। फिर, सोने से पूर्व, एक मौन क्षण उनके स्मरण में बिताइए, ताकि उनका नाम, न कि कोई चिन्ता, वह अन्तिम विचार हो जो आपके हृदय में विश्राम करे। इस छोटे से दैनिक मोड़ में, आप उसी कला का अभ्यास करते हैं जिसे भरत की कथा सिखाती है — संसार से खुले हाथ से प्रेम करना, और भगवान् को हृदय के केन्द्र में रखना।

उपसंहार

पंचम स्कन्ध का आठवाँ अध्याय यह मर्मस्पर्शी कथा कहता है कि किस प्रकार महान् भक्त भरत, राज्य और परिवार का त्याग करके भी, अन्ततः एक अकेले अनाथ मृगछौने के प्रेम से बाँध गए। शुद्ध करुणा से उसे नदी से बचाकर, वे इतने आसक्त हो गए कि उनकी साधना छूट गई, और मृत्यु के समय, उनका मन केवल मृग पर स्थिर, वे एक मृग की देह में जन्म ले बैठे। फिर भी भगवान् की कृपा ने उन्हें नहीं त्यागा: उन्होंने अपने पूर्वजन्म की स्मृति धारण की, गहरा पश्चात्ताप किया, और शालग्राम के पावन आश्रम में लौट आए, जहाँ उन्होंने सावधान तप में तब तक जीवन बिताया जब तक कि उन्होंने वह देह पावन गण्डकी के तट पर त्याग नहीं दी, उनका हृदय पुनः भगवान् की ओर मुड़ा हुआ। उनकी कथा प्रत्येक साधक के लिए एक कोमल, अविस्मरणीय शिक्षा है — कि हृदय की रक्षा अन्त तक करनी होती है, कि हम समस्त प्राणियों से प्रेम कर सकते हैं फिर भी केवल भगवान् से बाँधें, और कि कोई भी सच्ची भक्ति कभी सचमुच नष्ट नहीं होती।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, पंचम स्कन्ध, अष्टम अध्याय — भरत के मृगछौने के प्रति मोह और पतन की कथा।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान • विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-8-bharata-and-the-fawn-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

